Neutral Citation No. - 2026:AHC-LKO:19967-DB

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

लखनऊ

विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या **554/2024**

नीरज कुमार सिंह .....अपीलार्थी (गण)

बनाम

आनंद कुमार मिश्रा एवं 4 अन्य .....प्रत्यर्थी (गण)

अपीलार्थी (गण) के अधिवक्ता : हरि प्रसाद गुप्ता, भानु प्रताप सिंह, दुर्गेश कुमार वर्मा, संदीप कुमार ओझा

प्रत्यर्थी (गण) के अधिवक्ता : श्रीदीप चटर्जी, अमरजीत सिंह राखरा, सी.एस.सी., शुभम त्रिपाठी

ए.एफ.आर.

निर्णय सुरक्षित : **20.02.2026**

निर्णय सुनाया गया : **19.03.2026**

मुख्य न्यायमूर्ति न्यायालय

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति अरूण भंसाली
(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा प्रदत्त)

प्रकीर्ण आवेदन संख्या **1/2024**

1. प्रस्तुत विशेष अपील नीरज कुमार सिंह द्वारा न्यायालय से अपील प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान किए जाने हेतु एक आवेदन के साथ प्रस्तुत की गई है। इसके साथ ही प्रकीर्ण आवेदन संख्या 1/2024 भी संलग्न है, जिसके माध्यम से विलम्ब क्षमा किए जाने का निवेदन किया गया है, क्योंकि कार्यालय द्वारा यह प्रतिवेदित किया गया है कि यह अपील परिसीमा की अवधि से 63 दिन विलम्बित है।

2. रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जयदीप नारायण माथुर, जिनकी सहायता विद्वान अधिवक्ता श्री श्रीदीप चटर्जी द्वारा की गई, ने अपीलकर्ता नीरज कुमार सिंह के आग्रह पर प्रस्तुत इस विशेष अपील की ग्राह्यता के संबंध में प्रारम्भिक आपत्ति प्रस्तुत की है। इस आपत्ति पर कुछ पश्चात् विचार किया जाएगा।

3. तथापि, सर्वप्रथम विलम्ब क्षमा किए जाने संबंधी आवेदन पर विचार किया जाना उपयुक्त होगा। उक्त आवेदन के साथ एक शपथपत्र संलग्न है, जिसके पैरा 11 से 18 में विलम्ब क्षमा किए जाने के लिए स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया है।

अस्वीकरण
"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

Translated version. Not for Legal Use.

4. विलम्ब का स्पष्टीकरण देते हुए यह निवेदन किया गया कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिका स्वीकार करते हुए आदेश पारित किए जाने के उपरान्त उस आदेश को चुनौती देने हेतु अपील प्रस्तुत करना नियोजक संस्था, अर्थात् किंग जॉर्ज चिकित्साविज्ञान विश्वविद्यालय, लखनऊ (जिसे आगे संक्षेप में उक्त विश्वविद्यालय कहा जाएगा), का दायित्व था। तथापि, जब उक्त विश्वविद्यालय ने निर्धारित परिसीमा अवधि के भीतर विशेष अपील प्रस्तुत करने के लिए कोई सक्रिय कदम नहीं उठाया, तब उसके पश्चात् अपीलकर्ता नीरज कुमार सिंह ने प्रस्तुत विशेष अपील का प्रारूप तैयार कराया तथा उसे प्रस्तुत कराया। उपर्युक्त परिस्थितियों में प्रतिवेदित विलम्ब अनिच्छित तथा सद्भावपूर्वक हुआ है। अतः अपील प्रस्तुत करने में हुए विलम्ब को क्षमा किया जाना न्यायोचित है।

5. उपर्युक्त निवेदनों का रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता तथा उक्त विश्वविद्यालय की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह कहते हुए प्रतिवाद किया गया कि विलम्ब क्षमा किए जाने हेतु कोई समुचित स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया है, विशेषतः जब अपीलकर्ता नीरज कुमार सिंह को विशेष अपील प्रस्तुत करने का विधिक अधिकार ही प्राप्त नहीं है।

6. इस न्यायालय ने दोनों पक्षों की ओर से प्रस्तुत निवेदनों पर विचार किया है तथा यह पाया है कि रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री माथुर के निवेदनों का मूल आधार मुख्यतः अपीलकर्ता के विधिक अधिकार का प्रश्न था तथा विलम्ब का प्रश्न उसी से घनिष्ठ रूप से संबद्ध एवं उस पर निर्भर बताया गया है।

7. इस न्यायालय का मत है कि दोनों प्रश्न पृथक-पृथक हैं। अतः विधिक अधिकार के प्रश्न पर अपील प्रस्तुत करने की अनुमति संबंधी आवेदन का विचार करते समय पृथक रूप से विचार किया जाएगा।

8. जहाँ तक विलम्ब क्षमा किए जाने संबंधी आवेदन का प्रश्न है, प्रस्तुत विलम्ब के संबंध में दिए गए स्पष्टीकरण का अवलोकन करने पर यह न्यायालय इस मत का है कि विलम्ब का पर्याप्त स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया है। अतः विलम्ब क्षमा किए जाने संबंधी आवेदन स्वीकार किया जाता है तथा अपील प्रस्तुत करने में हुए विलम्ब को क्षमा किया जाता है। कार्यालय विशेष अपील को नियमित संख्या प्रदान करे।

<u>दिनांक **15.10.2024** के तृतीय पक्षकार/अपीलकर्ता द्वारा अपील प्रस्तुत करने की अनुमति संबंधी आवेदन पर आदेश</u>

9. रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री माथुर ने तृतीय पक्षकार/अपीलकर्ता नीरज कुमार सिंह द्वारा प्रस्तुत इस विशेष अपील की ग्राहयता तथा उसे यह विशेष अपील प्रस्तुत करने के विधिक अधिकार के संबंध में आपत्ति प्रस्तुत की।

10. यह निवेदन किया गया कि अपीलकर्ता इस वाद की कार्यवाही से सर्वथा असंबद्ध व्यक्ति है तथा उसे रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी के पक्ष में पारित निर्णय को चुनौती देने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है, क्योंकि वह पीड़ित व्यक्ति की श्रेणी में नहीं आता है।

11. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि जब तक अपीलकर्ता को कोई विधिक क्षति कारित न हुई हो, तब तक उसे ऐसे आदेश को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती, जो स्वभावतः केवल रिट याचिकाकर्ता तथा उसके नियोजक, अर्थात् किंग जॉर्ज चिकित्साविज्ञान विश्वविद्यालय, लखनऊ, के मध्य का विवाद है। यह भी निवेदन किया गया कि विवाद का स्वरूप ऐसा है, जो मुख्यतः नियोजक तथा कर्मचारी के मध्य का है। इस परिप्रेक्ष्य में अपीलकर्ता, जो स्वयं भी उक्त

Translated version. Not for Legal Use.

अस्वीकरण
"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

विश्वविद्यालय का कर्मचारी है, यह नहीं कह सकता कि विवादित आदेश से उसे कोई ऐसी शिकायत उत्पन्न हुई है, जिसके आधार पर वह उस आदेश को चुनौती देने का अधिकारी हो। यदि उस आदेश को चुनौती दी जानी होती, तो वह अधिक से अधिक ऐसे व्यक्ति द्वारा दी जा सकती थी, जिसे वास्तव में उससे विधिक क्षति पहुँची हो, अर्थात् नियोजक द्वारा।

12. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि विशेष रूप से ऐसे रिट प्रकरण में, जिसमें अभिलेख मँगाकर परीक्षण करने तथा आदेश निरस्त करने संबंधी लेखादेश की प्रार्थना की गई हो, वहाँ यह परीक्षण अत्यंत कठोरता से किया जाना आवश्यक है कि याचिकाकर्ता को याचिका प्रस्तुत करने का विधिक अधिकार प्राप्त है या नहीं। उच्च न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन प्रदत्त असाधारण अधिकारिता का प्रयोग पूर्णतः न्यायालय के विवेकाधीन होता है। इस अधिकारिता का आह्वान वही रिट याचिकाकर्ता कर सकता है, जो यह स्थापित करे कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 में परिभाषित राज्य द्वारा उसके मौलिक अथवा किसी अन्य विधिक अधिकार का उल्लंघन किया गया है। दो निजी व्यक्तियों के मध्य उत्पन्न विवाद का निराकरण रिट याचिका के माध्यम से नहीं किया जा सकता।

13. यह भी निवेदन किया गया कि प्रस्तुत प्रकरण में रिट याचिकाकर्ता ने अपनी सेवा से पदच्युति के आदेश को चुनौती दी थी। रिट याचिका स्वीकार कर ली गई तथा पदच्युति का आदेश निरस्त कर दिया गया। रिट याचिकाकर्ता को पुनः सेवा में स्थापित करने वाले ऐसे आदेश को अधिक से अधिक नियोजक ही चुनौती दे सकता था, क्योंकि वही उससे विधिक रूप से प्रभावित व्यक्ति हो सकता था। अपीलकर्ता, जो स्वयं उक्त विश्वविद्यालय का कर्मचारी है, उसके किसी भी अधिकार पर रिट याचिकाकर्ता के पक्ष में पारित आदेश का कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है।

14. रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि यदि किसी ऐसे व्यक्ति के आग्रह पर, जो वाद से सर्वथा असंबद्ध है, याचिका अथवा अपील प्रस्तुत करने के विधिक अधिकार के सिद्धांत को शिथिल कर दिया जाए तथा उसे आदेश को चुनौती देने की अनुमति प्रदान कर दी जाए, तो इससे ऐसे व्यक्तियों के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाएगा, जिनका विवाद से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है, किन्तु जो विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग कर सकते हैं। इससे न केवल न्यायालयों के समक्ष, बल्कि नियोजकों के लिए भी अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न होगी। अतः अपील प्रस्तुत करने की अनुमति संबंधी आवेदन अस्वीकार किया जाना चाहिए तथा परिणामस्वरूप विशेष अपील भी अस्वीकार की जानी चाहिए।

15. अपने निवेदनों के समर्थन में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री माथुर ने चन्द्र गुप्त बनाम भारत सरकार, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के सचिव तथा अन्य, **(1995) 1** एस.सी.सी. **23**, तथा एच. अंजनप्पा तथा अन्य बनाम ए. प्रभाकर तथा अन्य, **2025** एस.सी.सी. ऑनलाइन सर्वोच्च न्यायालय **183**, के निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त की। इसके अतिरिक्त उन्होंने इस न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा दिए गए केसरी देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य तथा अन्य, **2005** एस.सी.सी. ऑनलाइन इलाहाबाद **2371**, तथा विजय प्रकाश दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य तथा अन्य, **2022** एस.सी.सी. ऑनलाइन इलाहाबाद **1169**, के निर्णयों का भी अवलंब लिया।

Translated version- Not for Legal Use

अस्वीकरण
"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

16. अपीलकर्ता नीरज कुमार सिंह की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संजय भसीन, जिनकी सहायता विद्वान अधिवक्ता श्री एच. पी. गुप्ता द्वारा की गई, ने रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत निवेदनों का प्रतिवाद करते हुए निवेदन किया कि याचिका अथवा अपील प्रस्तुत करने के विधिक अधिकार तथा पीड़ित पक्षकार की अवधारणा का परीक्षण प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों के आलोक में किया जाना चाहिए। ये कोई निरपेक्ष सिद्धांत नहीं हैं, बल्कि प्रत्येक प्रकरण की परिस्थितियों के अनुसार इनका निर्धारण किया जाता है। यदि न्यायालय द्वारा पारित कोई आदेश किसी व्यक्ति के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, तो ऐसा व्यक्ति, मूल रिट कार्यवाही में पक्षकार न रहने पर भी, अपील का उपचार ग्रहण करने का अधिकारी होता है। यह भी निवेदन किया गया कि प्रस्तुत प्रकरण के तथ्य स्पष्ट रूप से यह स्थापित करते हैं कि अपीलकर्ता नीरज कुमार सिंह को अपील प्रस्तुत करने का विधिक अधिकार प्राप्त है, क्योंकि वह वास्तविक रूप से पीड़ित व्यक्ति है तथा इसी आधार पर वह प्रस्तुत विशेष अपील प्रस्तुत करने का अधिकारी है।

17. श्री भसीन ने निवेदन किया कि रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की नियुक्ति प्रारम्भ से ही वैधानिक नियमों के प्रतिकूल थी। अपीलकर्ता द्वारा इस संबंध में शिकायत प्रस्तुत की गई थी, जिसके अनुपालन में उक्त विश्वविद्यालय द्वारा कार्यवाही आरम्भ की गई। उस कार्यवाही के परिणामस्वरूप अनेक आदेश पारित हुए, जिनके द्वारा रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी को सेवा से पदच्युत कर दिया गया। उस पदच्युति को रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी ने प्रथम चरण में रिट याचिका संख्या 9049 सन् 2020 के माध्यम से चुनौती दी। उक्त रिट याचिका का निस्तारण कुछ निर्देशों के साथ किया गया था तथा उस समय अपीलकर्ता को भी रिट न्यायालय द्वारा सुनवाई का अवसर प्रदान किया गया था।

18. रिट न्यायालय द्वारा दिनांक 10.05.2022 को पारित आदेश के अनुपालन में नियोजक द्वारा रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी को नया कारण बताओ सूचना-पत्र जारी किया गया तथा तत्पश्चात दिनांक 06.06.2022 के आदेश द्वारा उसकी सेवाएँ समाप्त कर दी गईं।

19. दिनांक 06.06.2022 के उक्त आदेश को पुनः रिट याचिका संख्या 4805 सन् 2022 के माध्यम से चुनौती दी गई, जिसमें रिट न्यायालय ने दिनांक 04.08.2022 के आदेश द्वारा नियोजक, अर्थात् उक्त विश्वविद्यालय, को नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया। इसके उपरान्त नियोजक द्वारा पुनः दिनांक 02.12.2022 को सेवा-समापन का आदेश पारित किया गया, जिसे पुनः रिट याचिका संख्या 1414 सन् 2023 के माध्यम से चुनौती दी गई। रिट न्यायालय ने पुनः संबंधित पक्षकारों के निवेदनों पर विचार करते हुए रिट याचिका स्वीकार कर ली तथा दिनांक 02.12.2022 के सेवा-समापन आदेश को निरस्त करते हुए यह भी निर्देश दिया कि रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी को सेवा में पुनर्स्थापित किया जाए तथा उसे समस्त परिणामी लाभ प्रदान किए जाएँ।

20. श्री भसीन ने आगे निवेदन किया कि इस प्रकरण का मूल प्रश्न उक्त विश्वविद्यालय में रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की नियुक्ति की वैधता से संबंधित है। रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी तथा अपीलकर्ता दोनों एक ही संवर्ग के कर्मचारी हैं। अंतर केवल इतना है कि अपीलकर्ता की नियुक्ति नियमित रूप से हुई थी, जबकि रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी को अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति प्रदान की गई थी।

21. यह भी निवेदन किया गया कि जब रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की नियुक्ति स्वयं वैधानिक नियमों के प्रतिकूल थी, तब ऐसी नियुक्ति शून्य होने के कारण उसे सेवा में बने रहने की अनुमति नहीं दी

Translated version. Not for Legal Use.

अस्वीकरण
"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

जा सकती थी। जहाँ तक पक्षकारों के मध्य तथ्यात्मक स्थिति का प्रश्न है, वह विवादित नहीं है। यह स्पष्ट प्रकरण है जिसमें सक्षम प्राधिकारियों ने यह अभिलिखित किया था कि रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की नियुक्ति वैधानिक उपबंधों के प्रतिकूल थी, किन्तु विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका स्वीकार करते हुए यह माना कि नियुक्ति में प्रारम्भिक दोष होने मात्र से नियुक्ति शून्य नहीं हो जाती, बल्कि वह केवल अनियमित नियुक्ति है।

22. श्री भसीन ने आगे निवेदन किया कि उपर्युक्त परिस्थितियों में, जबकि रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की नियुक्ति स्वयं विधि-विरुद्ध थी, उससे अपीलकर्ता की ज्येष्ठता तथा पदोन्नति की संभावनाएँ प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती हैं। ऐसी स्थिति स्वाभाविक रूप से अपीलकर्ता को पीड़ित पक्षकार की परिभाषा के अंतर्गत लाती है तथा उसे उक्त निर्णय को चुनौती देने का विधिक अधिकार प्रदान करती है। यह चुनौती आदर्श रूप से नियोजक द्वारा दी जानी चाहिए थी, किन्तु उसके द्वारा, जिन कारणों की जानकारी उसी को है, ऐसा नहीं किया गया। परिणामस्वरूप अपीलकर्ता को स्वयं यह कदम उठाना पड़ा।

23. श्री भसीन ने आगे निवेदन किया कि रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा चन्द्र गुप्त (सुप्रा) के प्रकरण पर जो निर्भरता व्यक्त की गई है, उससे रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी को कोई सहायता प्राप्त नहीं होती, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं स्पष्ट रूप से कहा है कि उसने याचिका अथवा अपील प्रस्तुत करने के विधिक अधिकार के प्रश्न का निर्णय नहीं किया था। जब उस प्रश्न का निर्णय ही सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नहीं किया गया, तब उसे बाध्यकारी दृष्टांत नहीं माना जा सकता। इसी कारण इस न्यायालय की खण्डपीठों द्वारा केसरी देवी (सुप्रा) तथा विजय प्रकाश दीक्षित (सुप्रा) के प्रकरणों में, जिनमें केवल चन्द्र गुप्त (सुप्रा)के निर्णय का अनुसरण किया गया है, उन पर की गई निर्भरता भी रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी के लिए सहायक नहीं हो सकती।

24. श्री भसीन ने आगे निवेदन किया कि एच. अंजनप्पा (सुप्रा) के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने आवश्यक तथा उचित पक्षकारों की अवधारणा पर विचार किया है, जो मुख्यतः दीवानी वादों तथा दीवानी प्रक्रिया संहिता के सिद्धांतों के संदर्भ में है। अतः वह निर्णय भी रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी के पक्ष में सहायक नहीं है। इस प्रकार न तो तथ्यों के आधार पर और न ही विधि के आधार पर रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी अपीलकर्ता के अपील प्रस्तुत करने की अनुमति प्राप्त करने के अधिकार का विरोध कर सकता है।

25. अपने निवेदनों के समर्थन में श्री भसीन ने प्रेम सिंह तथा अन्य बनाम हरियाणा राज्य विद्युत मंडल तथा अन्य, **(1996) 4** एस.सी.सी. **319**, तथा हवलदार रोहमिंगलियाना तथा अन्य बनाम मिजोरम राज्य तथा अन्य, **2005** एस.सी.सी. ऑनलाइन गुवाहाटी **194**, के निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त की।

26. अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत अपील करने की अनुमति संबंधी आवेदन के विचारार्थ न्यायालय ने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना तथा अभिलेख का भी अवलोकन किया।

27. उक्त आवेदन पर विचार करने के लिए प्रासंगिक कुछ निर्विवाद तथ्य प्रारम्भ में निम्नलिखित रूप से उल्लेखनीय हैं:-

अस्वीकरण
"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

Translated version. Not for Legal Use

(ए) रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी तथा वर्तमान अपीलकर्ता नीरज कुमार सिंह, दोनों उक्त विश्वविद्यालय के कर्मचारी हैं। यह भी निर्विवाद है कि अपीलकर्ता की नियुक्ति दिनांक 07.11.2005 को हुई तथा उसकी सेवाएँ दिनांक 22.11.2008 को स्थायी कर दी गईं, जबकि रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की प्रारम्भिक नियुक्ति दिनांक 21.04.2004 को हुई तथा उसकी सेवाएँ दिनांक 27.07.2005 को कनिष्ठ लिपिक के पद पर स्थायी कर दी गईं। तत्पश्चात संवर्ग के पुनर्गठन के उपरान्त दोनों को प्रधान सहायक के पद पर नियुक्त किया गया।

(बी) रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी को प्रदान की गई नियुक्ति की वैधता के संबंध में जुलाई, 2018 में एक अधिवक्ता द्वारा शिकायत प्रस्तुत की गई थी। विभागीय प्राधिकारियों ने उक्त शिकायत को स्वीकार नहीं किया।

(सी) अप्रैल, 2020 में राज्य सरकार के समक्ष एक अन्य शिकायत प्रस्तुत की गई। उसके अनुपालन में राज्य सरकार ने उक्त विश्वविद्यालय के अनुशासनिक प्राधिकारी को रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की नियुक्ति के प्रश्न पर विचार करने का निर्देश दिया। राज्य सरकार के दिनांक 02.06.2020 के उक्त आदेश को रिट याचिका संख्या 9049 सन् 2020 में चुनौती दी गई, जिसका निस्तारण दिनांक 10.05.2022 के निर्णय द्वारा किया गया। यद्यपि उस निर्णय को विशेष अपील संख्या 239 सन् 2022 द्वारा चुनौती दी गई, तथापि आवश्यक अनुवर्ती कार्यवाही न होने के कारण वह विशेष अपील बिना किसी प्रभावी आदेश के लंबित रही।

(डी) इस बीच, रिट न्यायालय द्वारा दिनांक 10.05.2022 को पारित आदेश के अनुपालन में रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी को दिनांक 13.05.2022 को नया कारण बताओ सूचना-पत्र जारी किया गया, जिसके परिणामस्वरूप दिनांक 06.06.2022 को उसे सेवा से पदच्युत करने का आदेश पारित किया गया। इस आदेश को रिट याचिका संख्या 4805 सन् 2022 द्वारा चुनौती दी गई तथा विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 04.08.2022 के निर्णय द्वारा रिट याचिका स्वीकार करते हुए नवीन आदेश पारित करने के संबंध में विशिष्ट निर्देश दिए।

(ई) पुनः, रिट याचिका संख्या 4805 सन् 2022 में दिनांक 04.08.2022 को पारित निर्देशों के अनुपालन में दिनांक 02.12.2022 को पुनः पदच्युति का आदेश पारित किया गया। इस आदेश को रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी ने रिट याचिका संख्या 1414 सन् 2023 द्वारा चुनौती दी। इसी रिट याचिका को दिनांक 15.07.2024 के निर्णय एवं आदेश द्वारा स्वीकार किया गया, जिसे अब अपीलकर्ता नीरज कुमार सिंह अपील प्रस्तुत करने की अनुमति प्राप्त कर चुनौती देना चाहता है।

28. उपर्युक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि के आलोक में विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या नियोजक तथा उसके कर्मचारी के मध्य सेवा संबंधी नियुक्ति के विवाद में दो प्रतिद्वन्द्वी पक्षकारों के बीच पारित आदेश को कोई तृतीय पक्षकार अपील के माध्यम से चुनौती दे सकता है।

29. उपर्युक्त प्रश्न का, पूर्वोक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में, उत्तर देने के लिए यह आवश्यक है कि यदि किसी तृतीय पक्षकार के आग्रह पर चुनौती प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाती है, तो इस न्यायालय को यह परीक्षण करना होगा कि क्या अपीलकर्ता, तृतीय पक्षकार होने के नाते, विवादित आदेश को चुनौती

Translated version. Not for Legal Use

अस्वीकरण
"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

देने का विधिक अधिकार रखता है। साथ ही यह भी विचारणीय होगा कि पक्षकारों के मध्य विवाद के स्वरूप को दृष्टिगत रखते हुए क्या अपीलकर्ता को विधिक रूप से पीड़ित व्यक्ति माना जा सकता है।

30. इस न्यायालय का अभिप्राय यह है कि विचाराधीन प्रश्न का परीक्षण इस आधार पर किया जाए कि न्यायिक कार्यवाही में किसी व्यक्ति के याचिका अथवा अपील प्रस्तुत करने के विधिक अधिकार का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है तथा किन परिस्थितियों में किसी व्यक्ति को विधिक रूप से पीड़ित व्यक्ति माना जा सकता है।

31. ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी, अष्टम संस्करण में याचिका अथवा अपील प्रस्तुत करने के विधिक अधिकार तथा विधिक रूप से पीड़ित व्यक्ति का अर्थ निम्नवत् वर्णित किया गया है:-

याचिका अथवा अपील प्रस्तुत करने का विधिक अधिकार:- "किसी न्यायिक मंच के समक्ष कार्यवाही प्रारम्भ करने अथवा उस मंच पर सुने जाने का विधिक अधिकार" और

विधिक रूप से पीड़ित व्यक्ति:- "ऐसा व्यक्ति जिसके विधिक अधिकार प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुए हों अथवा जिसके विधिक अधिकारों का अतिक्रमण होने से उसे विधिक क्षति पहुँची हो।"

32. यह विधि द्वारा सुव्यवस्थित सिद्धांत है कि उच्च न्यायालयों द्वारा प्रदत्त लेखादेश पूर्णतः विवेकाधीन होते हैं तथा वे ऐसे व्यक्ति के पक्ष में जारी किए जाते हैं जिसके मौलिक अथवा विधिक अधिकारों का राज्य द्वारा उल्लंघन किया गया हो। इस पृष्ठभूमि में यह निर्विवाद है कि उक्त विश्वविद्यालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 में निहित राज्य की परिभाषा के अंतर्गत आता है।

33. नियोजक तथा कर्मचारी के मध्य उत्पन्न विवाद स्वभावतः उन्हीं दोनों के मध्य का व्यक्तिगत विवाद होता है। यहाँ 'व्यक्तिगत' शब्द का प्रयोग 'व्यक्ति-विशेष से संबंधित अधिकारों' के संदर्भ में किया गया है, जिससे उसका भेद उन वादों से स्पष्ट हो, जिनका प्रभाव अनेक व्यक्तियों अथवा किसी वर्ग-विशेष के अधिकारों पर पड़ता है। ऐसे मामलों में उस वर्ग का कोई भी व्यक्ति न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर कार्यवाही में भाग ले सकता है।

34. यदि नियोजक का कोई निर्णय किसी विशिष्ट कर्मचारी अथवा कर्मचारियों के विधिक अधिकारों का उल्लंघन करता है, तो ऐसे निर्णय को केवल वही कर्मचारी अथवा कर्मचारीगण, जो उससे विधिक रूप से पीड़ित हों, चुनौती दे सकते हैं। कोई अन्य कर्मचारी अथवा ऐसा तृतीय पक्षकार, जो उस निर्णय से प्रभावित नहीं है, उसे चुनौती देने का अधिकारी नहीं होता।

35. रिट याचिकाओं में याचिका अथवा अपील प्रस्तुत करने के विधिक अधिकार की अवधारणा का कठोरता से पालन किया जाता है, जिससे असंबद्ध व्यक्तियों द्वारा उच्च न्यायालय की असाधारण लेखादेश संबंधी अधिकारिता का दुरुपयोग न किया जा सके। तथापि, यह भी समान रूप से सत्य है कि जनहित संबंधी वादों में इस सिद्धांत का शिथिलीकरण किया जाता है, बशर्ते कि उसका उद्देश्य समाज के ऐसे वर्गों अथवा वंचित एवं उपेक्षित व्यक्तियों के हितों की रक्षा करना हो, जिन्हें न्याय तक पहुँच प्राप्त करने में कठिनाई हो सकती है। ऐसे मामलों में कोई जनहित से प्रेरित व्यक्ति, भले ही वह स्वयं उस विषय से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित न हो, न्यायालय का ध्यान उस विषय की ओर आकृष्ट कर सकता है।

Translated version. Not for Legal Use.

अस्वीकरण
"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

36. यह ध्यान देने योग्य है कि नियोजक तथा कर्मचारी के मध्य उत्पन्न विवाद मूलतः व्यक्तिगत विवाद होता है और उसे जनहित संबंधी वाद की परिधि से बाहर रखा गया है।

37. याचिका अथवा अपील प्रस्तुत करने के विधिक अधिकार तथा विधिक रूप से पीड़ित व्यक्ति की अवधारणा को समझने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के कुछ निर्णयों का उल्लेख करना उपयुक्त होगा।

38. जसबाई मोतीभाई देसाई बनाम रोशन कुमार, **(1976) 1** एस.सी.सी. **671**, में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत वर्तमान विवाद के निर्णय के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं, जिन्हें निम्नलिखित रूप में उद्धृत किया जा रहा है:-

13. इससे अगला प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि "विधिक रूप से पीड़ित व्यक्ति" कौन है तथा उस स्थिति को प्राप्त करने के लिए किन आवश्यक योग्यताओं का होना अपेक्षित है? "विधिक रूप से पीड़ित व्यक्ति" अभिव्यक्ति का अर्थ व्यापक तथा कुछ सीमा तक परिवर्तनशील है। इसे किसी कठोर, निश्चित एवं सर्वसमावेशी परिभाषा की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। अधिक से अधिक इसके प्रमुख लक्षणों का सामान्य रूप में वर्णन किया जा सकता है। इसका क्षेत्र तथा अर्थ अनेक परिवर्तनीय तत्त्वों पर निर्भर करता है, जैसे- उस विधि का उद्देश्य तथा आशय जिसके उल्लंघन का आरोप लगाया गया है, प्रत्येक प्रकरण की विशिष्ट परिस्थितियाँ, याचिकाकर्ता के हित का स्वरूप एवं विस्तार तथा उसे हुई प्रतिकूलता अथवा विधिक क्षति का स्वरूप एवं सीमा। इंग्लैंड के न्यायालयों ने अनेक अवसरों पर "विधिक रूप से पीड़ित व्यक्ति" अभिव्यक्ति का कभी संकीर्ण तथा कभी व्यापक अर्थ ग्रहण किया है। तथापि, यह निर्धारित करने के लिए कि कोई आवेदक इस श्रेणी में आता है अथवा नहीं और क्या उसे अभिलेख मँगाकर परीक्षण करने तथा आदेश निरस्त करने संबंधी लेखादेश की अधिकारिता का आह्वान करने का आवश्यक विधिक अधिकार प्राप्त है, कुछ सामान्य मानदंड विकसित किए गए हैं।

* * *

37. यह स्पष्ट है कि अभिलेख मँगाकर परीक्षण करने तथा आदेश निरस्त करने संबंधी लेखादेश की याचिका प्रस्तुत करने के विधिक अधिकार के संदर्भ में सामान्यतः कोई आवेदक निम्नलिखित तीन श्रेणियों में से किसी एक में आ सकता है- (1) "विधिक रूप से पीड़ित व्यक्ति", (2) "असंबद्ध व्यक्ति", तथा (3) "अनावश्यक हस्तक्षेप करने वाला अथवा अनुचित रूप से बीच में प्रवेश करने वाला व्यक्ति"। अंतिम श्रेणी के व्यक्तियों की पहचान प्रथम दो श्रेणियों की तुलना में सरल है। ऐसे व्यक्ति उन विषयों में हस्तक्षेप करते हैं जिनसे उनका कोई संबंध नहीं होता। वे स्वयं को न्याय के संरक्षक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे यह प्रदर्शित करने का प्रयास करते हैं कि वे लोकहित में कार्य कर रहे हैं, जबकि न तो उनका कोई निजी हित सुरक्षित किया जाना होता है और न ही वास्तविक रूप से जनहित का कोई उद्देश्य होता है। वे केवल आदतन अथवा अनुचित उद्देश्यों से न्यायिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप करते हैं। अनेक बार उनकी प्रेरणा केवल प्रसिद्धि अथवा सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करना होती है, जबकि कुछ व्यक्तियों का वास्तविक उद्देश्य प्रशासनिक कार्यवाही में अनावश्यक अवरोध उत्पन्न करना मात्र होता है। ऐसे व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत आवेदनों को उच्च न्यायालय को प्रारम्भिक स्तर पर ही अस्वीकार कर देना चाहिए।

38. प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के आवेदकों के मध्य भेद वास्तविक तो है, किन्तु सदैव स्पष्ट रूप से रेखांकित नहीं किया जा सकता। प्रथम श्रेणी को दो परिधियों में विभाजित किया जा सकता है- एक भीतरी निश्चित परिधि तथा दूसरी बाहरी ऐसी परिधि, जहाँ निश्चितता क्रमशः कम होती जाती है। भीतरी परिधि में वे व्यक्ति आते हैं जिनके विधिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है। ऐसे व्यक्ति निःसंदेह "विधिक रूप से पीड़ित व्यक्ति" की श्रेणी में आते हैं। बाहरी परिधि में प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के मध्य विभाजन क्रमशः धुँधला होता जाता है तथा दोनों के बीच की सीमाएँ एक-दूसरे में विलीन होने लगती हैं। इस बाहरी परिधि में आने वाले सभी व्यक्तियों को आवश्यक रूप से विधिक रूप से पीड़ित व्यक्ति नहीं माना जा सकता।

39. ऐसे आवेदकों को "असंबद्ध व्यक्तियों" से पृथक करने के लिए उपर्युक्त विचारों से कुछ सामान्य मानदंड निकाले जा सकते हैं। ये मानदंड अंतिम अथवा अपरिवर्तनीय नहीं हैं। इनकी उपयोगिता प्रत्येक प्रकरण की परिस्थितियों तथा उस विधिक संदर्भ के अनुसार परिवर्तित हो सकती है

अस्वीकरण
"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

Translated version. Not for Legal Use.

जिसमें प्रश्न विचारणीय हो। ऐसे मानदंड निम्नलिखित हैं- क्या आवेदक ऐसा व्यक्ति है जिसके विधिक अधिकार का उल्लंघन हुआ है? क्या उसे ऐसी विधिक क्षति पहुँची है जिससे उसका विधि द्वारा मान्यता प्राप्त हित प्रत्यक्ष तथा प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुआ है?

क्या उसे ऐसी विधिक शिकायत है जिसके अंतर्गत उसके विरुद्ध कोई ऐसा निर्णय दिया गया है जिससे उसे अनुचित रूप से किसी अधिकार अथवा लाभ से वंचित किया गया हो, अथवा किसी अधिकार अथवा लाभ से अनुचित रूप से इंकार किया गया हो, अथवा किसी अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाला गया हो?

क्या उसकी ऐसी विशिष्ट तथा पर्याप्त व्यक्तिगत शिकायत है जो सामान्य जनता को होने वाली सामान्य असुविधा अथवा शिकायत से भिन्न है? क्या विवादित कार्यवाही किए जाने से पूर्व उसे आपत्ति प्रस्तुत करने तथा सुने जाने का विधिक अधिकार प्राप्त था? यदि ऐसा था, तो क्या प्राधिकारी द्वारा अधिकारिता का अतिक्रमण किए जाने के कारण उस अधिकार के प्रयोग में उसे प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया गया? क्या वह विधि, जिसके संदर्भ में विधिक रूप से पीड़ित व्यक्ति शब्द का अर्थ विचाराधीन है, समाज के कल्याण के उद्देश्य से निर्मित ऐसी विधि है जिसका उद्देश्य समुदाय के लिए नैतिक अथवा व्यावसायिक आचरण के मानक निर्धारित करना है, अथवा वह ऐसी विधि है जो विशिष्ट व्यक्तियों के निजी अधिकारों से संबंधित है?

39. हरि बंश लाल बनाम सहोदर प्रसाद महतो एवं अन्य, **(2010) 9 एस.सी.सी. निर्णय 655**, में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया कि सेवा संबंधी विषयों में, अधिकार-पृच्छा संबंधी रिट को छोड़कर, लोकहित याचिका ग्राह्य नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुच्छेद-34 में की गई प्रासंगिक टिप्पणियाँ निम्नलिखित हैं:-

"34. विचार-विमर्श तथा विश्लेषण से निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित होते हैं:

(ए) अधिकार-पृच्छा संबंधी रिट को छोड़कर, सेवा संबंधी विषयों में लोकहित याचिका ग्राह्य नहीं है।

(बी) अधिकार-पृच्छा संबंधी रिट जारी करने के लिए उच्च न्यायालय का यह संतुष्ट होना आवश्यक है कि नियुक्ति विधिक अधिनियमों अथवा वैधानिक नियमों के प्रतिकूल की गई है।

(सी) शासकीय सेवा के किसी पद पर नियुक्ति के लिए किसी अभ्यर्थी की उपयुक्तता अथवा अनुपयुक्तता का निर्धारण नियुक्ति प्राधिकारी का कार्य है, न्यायालय का नहीं; जब तक कि नियुक्ति वैधानिक उपबंधों अथवा नियमों के प्रतिकूल न हो।"

40. सर्वोच्च न्यायालय ने अय्यूबखान नूरखान पठान बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, **(2013) 4** सर्वोच्च न्यायालय निर्णय **465**, में वाद प्रस्तुत करने की पात्रता, प्रतिकूल रूप से प्रभावित व्यक्ति, तथा विधिक क्षति के प्रश्न पर विचार करते हुए निम्नलिखित प्रतिपादित किया:-

"प्रतिकूल रूप से प्रभावित व्यक्ति

9. यह एक स्थापित विधिक सिद्धांत है कि किसी बाहय व्यक्ति को किसी कार्यवाही में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं दी जा सकती, जब तक कि वह सक्षम प्राधिकारी अथवा न्यायालय को यह संतुष्ट न कर दे कि वह प्रतिकूल रूप से प्रभावित व्यक्तियों की श्रेणी में आता है। केवल वही व्यक्ति, जिसे विधिक क्षति हुई है अथवा हो रही है, किसी कार्य, कार्रवाई, आदेश आदि को न्यायालय में चुनौती दे सकता है। संविधान के 226 अनुच्छेद के अधीन रिट याचिका या तो किसी वैधानिक अथवा विधिक अधिकार के प्रवर्तन के उद्देश्य से ग्राह्य होती है, अथवा तब जब याचिकाकर्ता यह शिकायत करे कि प्राधिकारियों द्वारा किसी वैधानिक कर्तव्य का उल्लंघन किया गया है। अतः ऐसा अधिकार विद्यमान होना आवश्यक है, जिसका न्यायिक रूप से प्रवर्तन कराया जा सके और जिसके आधार पर रिट अधिकारिता का आश्रय लिया जाए। न्यायालय अपनी रिट अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी लोक निकाय को उसके वैधानिक कर्तव्य के पालन हेतु बाध्य कर सकता है, बशर्ते कि संबंधित व्यक्ति न्यायालय को यह संतुष्ट कर दे कि उसे ऐसे पालन की अपेक्षा करने का विधिक अधिकार प्राप्त है। ऐसे

अस्वीकरण
"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

अधिकार का अस्तित्व न्यायालय की रिट अधिकारिता के आह्वान की पूर्वापेक्षित शर्त है। इस असाधारण अधिकारिता के प्रयोग में यह निहित है कि माँगी गई राहत किसी विधिक अधिकार के प्रवर्तन हेतु ही हो। वस्तुतः ऐसे अधिकार का अस्तित्व ही उक्त अधिकारिता के प्रयोग का आधार है। जिस विधिक अधिकार का प्रवर्तन कराया जाना है, वह सामान्यतः उसी अपीलकर्ता का होना चाहिए, जो उसके उल्लंघन की शिकायत करते हुए न्यायालय से उसी संबंध में प्रतिकार की प्रार्थना करता है। [उड़ीसा राज्य बनाम मदन गोपाल रुंगटा 1951 [एस.सी.सी. 1024 : ए.आई.आर 1952 एस.सी. 12] ; सगीर अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [ए.आई.आर 1954 एस.सी. 728] ; कलकत्ता गैस कंपनी (स्वामित्वाधीन) लिमिटेड बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [ए.आई.आर 1962 एस.सी. 1044]; राजेन्द्र सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(1996) 5 एस.सी.सी. 460 : ए.आई.आर. 1996 एस.सी. 2736]; तथा तमिलनाड मर्केंटाइल बैंक अंशधारक कल्याण संघ (2) बनाम एस. सी. सेकर [(2009)2 एस.सी.सी. 784]]

10. "विधिक अधिकार" से अभिप्राय ऐसा अधिकार है, जो विधिक नियमों से उत्पन्न होने वाला हक हो। अतः इसे ऐसा लाभ अथवा ऐसी सुविधा कहा जा सकता है, जो विधि के शासन द्वारा किसी व्यक्ति को प्रदान की गई हो। "व्यथित व्यक्ति" अभिव्यक्ति में ऐसा व्यक्ति सम्मिलित नहीं होता, जिसे केवल मानसिक अथवा काल्पनिक क्षति हुई हो; इसलिए व्यथित व्यक्ति वही माना जाएगा, जिसके अधिकार अथवा हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हो अथवा जो संकटग्रस्त हो गया हो। (देखें : शांति कुमार आर. कांजी बनाम न्यूयॉर्क होम इंश्योरेंस कंपनी, (1974) 2 एस.सी.सी. 387 : ए.आई.आर. 1974 एस.सी. 1719 तथा राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ, (1977) 3 एस.सी.सी. 592 : ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 1361।)

* * *

14. इस न्यायालय ने निरंतर न्यायालयों को ऐसे कपटपूर्ण व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत जनहित याचिकाओं पर विचार करने के प्रति सावधान किया है, क्योंकि ऐसे अनधिकृत हस्तक्षेप करने वाले व्यक्ति न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने में तनिक भी संकोच नहीं करते। न्याय तक प्रभावी पहुँच का अधिकार, जो नवीन सामाजिक अधिकार व्यवस्था के साथ विकसित हुआ है, का उपयोग मूलभूत मानवाधिकारों की रक्षा के लिए किया जाना चाहिए, जिनका उद्देश्य विधिक अधिकारों की गारंटी प्रदान करना है। इसलिए न्यायिक व्यवस्था के ढाँचे के भीतर प्रभावी प्रतिकार का उपाय उपलब्ध कराया जाना आवश्यक है। जब भी जनहित का आधार लेकर न्यायालय का अधिकार क्षेत्र आहूत किया जाए, तब न्यायालय को यह परीक्षण करना चाहिए कि वास्तव में उसमें वास्तविक जनहित निहित है या नहीं। न्यायालय को यह सुनिश्चित करने के लिए कठोर सतर्कता बनाए रखनी चाहिए कि न्यायालय की प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग न हो तथा सामान्यतः अनधिकृत हस्तक्षेप करने वाले दर्शकों को प्रवेश की अनुमति न प्रदान की जाए। समाज में विद्यमान अनेक विकृतियाँ ऐसी नई समस्याएँ उत्पन्न करती हैं, जिनसे संबंधित शिकायतों का निवारण नहीं हो पाता; अतः न्यायालय को उन मामलों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने का प्रयास करना चाहिए, जिनमें वाद का वास्तविक उद्देश्य ऐसे हस्तक्षेप की आवश्यकता को उचित ठहराता हो। (देखें : पी.एस.आर. साधानन्थम् बनाम अरुणाचलम्, (1980) 3 एस.सी.सी. 141 : 1980 एस.सी.सी. (आपराधिक) 649 : ए.आई.आर. 1980 एस.सी. 856; दलीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 2 एस.सी.सी. 114 : (2010) 1 एस.सी.सी. (दीवानी) 324; उत्तरांचल राज्य बनाम बलवन्त सिंह चौफाल, (2010) 3 एस.सी.सी. 402 : (2010) 2 एस.सी.सी. (आपराधिक) 81 : (2010) 1 एस.सी.सी. (श्रम एवं सेवा) 807; तथा अमर सिंह बनाम भारत संघ, (2011) 7 एस.सी.सी. 69 : (2011) 3 एस.सी.सी. (दीवानी) 560।)

Translated version. Not for Legal Use.

अस्वीकरण
"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

15. जहाँ तक जनहित याचिका प्रस्तुत करने का प्रश्न है, इस न्यायालय ने निरंतर यह प्रतिपादित किया है कि सेवा संबंधी मामलों में ऐसा उपाय स्वीकार्य नहीं है। (देखें : दुर्योधन साहू बनाम जितेन्द्र कुमार मिश्र, (1998) 7 एस.सी.सी. 273 : 1998 एस.सी.सी. (श्रम एवं सेवा) 1802 : ए.आई.आर. 1999 एस.सी. 114; दत्ताराज नाथूजी थावरे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2005) 1 एस.सी.सी. 590 : ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 540; तथा नीतू बनाम पंजाब राज्य, (2007) 10 एस.सी.सी. 614 : ए.आई.आर. 2007 एस.सी. 758।)

41. अब उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, चन्द्र गुप्ता (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करना उपयुक्त होगा, जिसमें विचारणीय प्रश्न प्रतिकूल अभिलेखीय टिप्पणियों के विलोपन तथा उसके परिणामस्वरूप पदोन्नति से संबंधित था; अर्थात् क्या ऐसी पदोन्नति उस तिथि से प्रभावी मानी जाएगी, जिस तिथि से वह देय थी, तथा संबंधित अधिकारी की ज्येष्ठता का निर्धारण किस प्रकार किया जाएगा। इस पृष्ठभूमि में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिमत व्यक्त किया:-

"23. उक्त नियमों में यह उपबंध नहीं है कि शासन द्वारा प्रतिकूल टिप्पणियाँ अभिलिखित किए जाने अथवा उनका विलोपन किए जाने के संबंध में किसी अन्य अधिकारी को आपत्ति प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया जाए। अतः इसका स्वाभाविक परिणाम यह है कि किसी भी व्यक्ति को प्रतिकूल अभिलेखीय प्रविष्टि के विलोपन को चुनौती देने का न तो कोई विधिक अधिकार प्राप्त है और न ही ऐसा करने की विधिसम्मत पात्रता।"

* * *

25. जिस तथ्य पर विशेष सावधानीपूर्वक ध्यान दिया जाना आवश्यक है, वह यह है कि न्यायालय प्रतिकूल टिप्पणियों के विलोपन के उस प्रभाव पर विचार कर रहा था, जिससे पदोन्नति की संभावनाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता था। यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि किसी भी कर्मचारी को पदोन्नति की संभावना पर कोई अधिकार अथवा निहित अधिकार प्राप्त नहीं होता। इस सिद्धांत को इस न्यायालय ने रामचन्द्र शंकर देवधर बनाम महाराष्ट्र राज्य (1974) 1 सर्वोच्च न्यायालय निर्णय 317 : [1974 एस.सी.सी. (एल एण्ड एस) 137 : (1974) 2 एस.सी.आर. 216] : (एस.सी.सी. पी.329, पैरा 15) में निम्नलिखित रूप में प्रतिपादित किया:-

"अब यह इस न्यायालय के मैसूर राज्य बनाम जी. एन. पुरोहित के निर्णय द्वारा विधि का स्थापित सिद्धांत है कि यद्यपि पदोन्नति हेतु विचार किए जाने का अधिकार सेवा की एक शर्त है, तथापि मात्र पदोन्नति की संभावना सेवा की शर्त नहीं है। कोई ऐसा नियम जो केवल पदोन्नति की संभावनाओं को प्रभावित करता हो, सेवा की शर्तों में परिवर्तन करने वाला नहीं माना जा सकता। पुरोहित प्रकरण में स्वच्छता निरीक्षकों की जिला-वार ज्येष्ठता को परिवर्तित कर राज्य-वार ज्येष्ठता कर दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिवादी ज्येष्ठता क्रम में नीचे चले गए और अत्यंत कनिष्ठ हो गए। यह तर्क दिया गया कि इससे उनकी पदोन्नति की संभावनाएँ प्रभावित हुईं, जो उपबंध के अधीन संरक्षित थीं। इस तर्क को अस्वीकार करते हुए न्यायालय की ओर से यह कहा गया:-

'प्रतिवादियों की ओर से यह कहा गया कि उनकी पदोन्नति की संभावनाएँ प्रभावित होने के कारण उनकी सेवा की शर्तों में उनके प्रतिकूल परिवर्तन हुआ है। हमें इस तर्क में कोई बल प्रतीत नहीं होता, क्योंकि पदोन्नति की संभावनाएँ सेवा की शर्त नहीं होतीं।'"

42. इसके उपरांत सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिकूल प्रविष्टियों तथा पदोन्नति से संबंधित अन्य निर्णयों पर विचार किया और तत्पश्चात पैरा-36 में निम्नलिखित प्रतिपादित किया—

"36. जिस तथ्य पर विशेष सावधानीपूर्वक ध्यान दिया जाना आवश्यक है, वह यह है कि पदोन्नति के लिए पात्रता एक पृथक विषय है, जबकि वास्तविक पदोन्नति सर्वथा भिन्न विषय है। इस निर्णय में भी केवल नियमों के अनुसार पदोन्नति प्रदान किए जाने का निर्देश दिया गया था। यदि यह मान भी लिया जाए कि इस निर्णय के आधार पर अपीलकर्ता उन प्रतिकूल प्रविष्टियों के अभाव में उस

Translated version. Not for Legal Use.

अस्वीकरण
"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

तिथि से पदोन्नति पाने का अधिकारी था, जिस तिथि को वह पदोन्नति के लिए पात्र हुआ था, तब भी निम्नलिखित प्रश्नों पर तथ्यात्मक निष्कर्ष दिया जाना आवश्यक होगा:-

1. क्या 1980-81 तथा 1981-82 की प्रतिकूल प्रविष्टियाँ वास्तव में संबंधित अधिकारी को संप्रेषित की गई थीं?

2. प्रतिकूल टिप्पणियों के विलोपन के उपरांत, क्या विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा गुण-दोष का तुलनात्मक मूल्यांकन किया गया था?

ये सभी प्रश्न 1992 के मूल आवेदन संख्या 617 में विचाराधीन हैं। अतः अपीलकर्ता की प्रतिवादी संख्या 3 से 5 पर ज्येष्ठता के अधिकार के संबंध में हम इससे अधिक कुछ कहना उचित नहीं समझते। यह प्रश्न मूल आवेदन संख्या 617, 1992 में दिए जाने वाले निर्णय पर निर्भर करेगा।"

43. इस प्रकार स्पष्ट है कि उक्त संदर्भ में, जहाँ यह विवाद केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष मूल आवेदन संख्या 617, 1992 में विचाराधीन था, तथा प्रतिद्वंद्वी पक्षकारों के अधिकारों की रक्षा के उद्देश्य से सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा-39 में निम्नलिखित अभिमत व्यक्त किया:-

"39. हमारा मत है कि इस अवस्था में अंतरिम आदेशों के विरुद्ध इस दिवानी अपील का विचार किया जाना उचित नहीं होगा। हम यह स्पष्ट कर देते हैं कि उपर्युक्त सामान्य टिप्पणियों द्वारा हमने अपीलकर्ताओं के विरुद्ध की गई प्रतिकूल टिप्पणियों के विलोपन के संबंध में प्रतिवादी संख्या **3** से **5** की वाद प्रस्तुत करने की विधिसम्मत पात्रता के प्रश्न का कोई अंतिम निर्णय नहीं किया है।"

44. इसके अतिरिक्त, यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि चन्द्र गुप्ता (सुप्रा) के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिकूल प्रविष्टियों से संबंधित आदेशों को चुनौती देने के किसी व्यक्ति के अधिकार के संबंध में सामान्य विधिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। ऐसे सामान्य सिद्धांत एवं टिप्पणियों पर कोई विवाद नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे सार्वभौमिक रूप से लागू होने वाले सिद्धांत हैं। तथापि, उनका वास्तविक अनुप्रयोग प्रत्येक प्रकरण के विशिष्ट तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। उक्त निर्णय में यह भी स्पष्ट एवं निर्विवाद रूप से प्रतिपादित किया गया है कि संबंधित व्यक्ति को यह स्पष्ट रूप से स्थापित करना होगा कि विवादित आदेश से उसके अधिकार अथवा हित प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए हैं। केवल संभावना अथवा मात्र पदोन्नति की संभावनाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना किसी व्यक्ति को कार्यवाही में अनधिकृत रूप से हस्तक्षेप करने का विधिक अधिकार प्रदान करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसी सिद्धांत का उल्लेख इस न्यायालय की द्वैधपीठ द्वारा विजय प्रकाश दीक्षित (सुप्रा) तथा केसरी देवी (सुप्रा) के निर्णयों में किया गया है।

45. इसी प्रकार का प्रश्न राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष भी उत्पन्न हुआ था, जिसमें हममें से एक (माननीय न्यायमूर्ति अरुण भंसाली) को कमली राम मीणा बनाम अजमेर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड, **2022** सर्वोच्च न्यायालय निर्णय ऑनलाइन राजस्थान **2322**, में समान विधिक प्रश्न पर विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ। उसमें निम्नलिखित प्रतिपादित किया गया:-

"33. उपर्युक्त विवेचना के आलोक में, चन्द्र गुप्ता (सुप्रा) के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए गए निर्धारण से यह स्पष्ट है कि केवल इस आधार पर कि याचिकाकर्ता की पदोन्नति प्रभावित होगी अथवा प्रभावित हुई है, उसकी वाद प्रस्तुत करने की विधिसम्मत पात्रता स्वीकार नहीं की जा सकती। चूँकि प्रतिवादी संख्या **4** के विरुद्ध अधिरोपित दण्ड को निदेशक मंडल द्वारा निरस्त किए जाने संबंधी आदेश की वैधता को चुनौती देने का याचिकाकर्ता का एकमात्र आधार यही है कि उसकी पदोन्नति प्रभावित हुई है, इसलिए स्पष्टतः याचिकाकर्ता को उक्त याचिका बनाए रखने की विधिसम्मत पात्रता प्राप्त नहीं है।"

46. हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने राजस्थान लोक सेवा आयोग बनाम यति जैन, **2026** एस.सी.सी. ऑनलाइन **80**, के पैरा 65 से 67 में निम्नलिखित विधिक सिद्धांत प्रतिपादित किए:-

"65. उपर्युक्त दृष्टांतों से मार्गदर्शन प्राप्त करते हुए हमारे विचार में यह स्पष्ट है कि अपील प्रस्तुत करने की विधिसम्मत पात्रता रखने वाला 'प्रतिकूल रूप से प्रभावित व्यक्ति' वही होगा जो किसी निर्णय, आदेश अथवा विनिश्चय से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित या उसके प्रभावाधीन हुआ हो, भले ही उस

अस्वीकरण
"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

निर्णय द्वारा उससे प्रत्यक्ष रूप से कोई कार्य करने की अपेक्षा न की गई हो; अथवा वह व्यक्ति, जो वाद का पक्षकार रहा हो और जिसके हित उस डिक्री से प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुए हों। अपील प्रस्तुत करने के लिए ऐसे व्यक्ति को सामान्यतः यह प्रदर्शित करना होगा कि उसके किसी विधिक अधिकार अथवा हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है अथवा वह उस निर्णय के परिणामस्वरूप किसी विधिक अपकार का शिकार होने की संभावना रखता है। मूल न्यायालय द्वारा निर्णीत विषय-वस्तु में मात्र रुचि अथवा चिंता होना पर्याप्त नहीं है।

66. यह विचार करना भी प्रासंगिक है कि जो पक्ष अपील प्रस्तुत करना चाहता है, क्या वह मूल न्यायालय की कार्यवाही का पक्षकार था। यदि वह पक्षकार था और उसके हितों को संकट में डालने वाला निर्णय पारित किया गया है, तो स्वाभाविक रूप से उसे उस निर्णय की अपीलीय परीक्षण कराने का अधिकार होगा। केवल असाधारण परिस्थितियों में ही अपीलीय न्यायालय किसी प्रतिवादी पक्षकार को इस आधार पर अपील से वंचित कर सकता है कि उसके किसी अधिकार अथवा हित पर वास्तविक प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है।

67. उपर्युक्त विवेचना के आधार पर, सामान्य सिद्धांत के रूप में हम उन आवश्यक शर्तों का सार निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिनकी पूर्ति होने पर ही कोई व्यक्ति अपील बनाए रखने का अधिकारी होगा:-

1. अपील प्रस्तुत करने वाला पक्ष उस कार्यवाही का पक्षकार रहा हो, जिससे अपील उत्पन्न हुई है।

2. अपील का विषय उच्च न्यायालय द्वारा विवादित पक्षकारों के अधिकारों के संबंध में दिया गया अंतिम एवं निर्णायक निर्णय हो।

3. वह 'प्रतिकूल रूप से प्रभावित व्यक्ति' हो, अर्थात् ऐसा पक्षकार जिसके अधिकारों अथवा हितों पर उक्त निर्णय का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हो।"

47. उपर्युक्त निर्णयों में प्रतिपादित मूल विधिक सिद्धांतों का सम्यक् विचार करने पर यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अपीलकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उद्धृत प्रेम सिंह (सुप्रा) तथा हवलदार रोहमिंगलियाना (सुप्रा) के निर्णय वर्तमान प्रकरण में अपीलकर्ता के पक्ष में सहायक नहीं हो सकते।

48. जहाँ तक सर्वोच्च न्यायालय के एच. अंजनप्पा (सुप्रा) के निर्णय का संबंध है, उसमें अनुच्छेद-58 में उन विधिक सिद्धांतों का सार प्रतिपादित किया गया है जो उचित पक्षकार तथा आवश्यक पक्षकार के प्रश्न से संबंधित हैं। उक्त सिद्धांत मुख्यतः दिवानी वादों के संदर्भ में प्रतिपादित किए गए हैं तथा सेवा-विधि से उत्पन्न विवादों पर उनका कठोर अथवा यथावत् अनुप्रयोग आवश्यक नहीं है। अतः वर्तमान प्रकरण में उनकी उपयोगिता अत्यधिक नहीं मानी जा सकती।

49. उपर्युक्त निर्णयों का अवलोकन करने तथा उनमें प्रतिपादित सिद्धांतों को वर्तमान प्रकरण पर लागू करने से यह स्पष्ट होता है कि ऐसा प्रत्येक आदेश, जिससे केवल किसी संयोगवश भविष्य में किसी व्यक्ति के किसी अधिकार के प्रभावित होने की संभावना उत्पन्न हो, उसे कार्यवाही में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्रदान नहीं करता। जिस विधिक क्षति की शिकायत की जाती है, वह वास्तविक होनी चाहिए तथा उसका वर्तमान विवाद से प्रत्यक्ष संबंध एवं समय की दृष्टि से पर्याप्त निकटता होना आवश्यक है। निस्संदेह, सेवा-विधि के क्षेत्र में पारित कुछ आदेश ऐसे हो सकते हैं जो किसी संपूर्ण संवर्ग की ज्येष्ठता अथवा पदोन्नति को प्रभावित करने की क्षमता रखते हों, और ऐसे आदेशों के विरुद्ध प्रभावित कर्मचारियों को उन्हें चुनौती देने का अधिकार प्राप्त हो सकता है। किन्तु इस सिद्धांत का इतना विस्तार नहीं किया जा सकता कि प्रत्येक अथवा कोई भी कर्मचारी ऐसे प्रत्येक आदेश को चुनौती देने लगे, जो किसी एक अथवा कुछ विशिष्ट कर्मचारियों के विरुद्ध पारित हुआ हो और जिससे प्रत्यक्ष रूप से वही कर्मचारी प्रभावित हुए हों। इसी कारण वाद प्रस्तुत करने की विधिसम्मत पात्रता तथा प्रतिकूल रूप से प्रभावित व्यक्ति के प्रश्न का निर्धारण करते समय यह देखा जाना आवश्यक है कि कथित क्षति अथवा आदेश का प्रभाव कितना प्रत्यक्ष है तथा उसका विवादित आदेश से कितना निकट संबंध है।

Translated version. Not for Legal Use.

अस्वीकरण
"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

50. वर्तमान प्रकरण में, यद्यपि अपीलकर्ता तथा रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी एक ही नियोजक के अधीन सेवा में कार्यरत हैं तथा मूलतः एक ही पद पर नियुक्त हैं, तथापि उनके मध्य ऐसा कोई विवाद नहीं है जिससे रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी के विरुद्ध पारित सेवा से पदच्युति के आदेश, जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा निरस्त कर दिया गया है, के कारण दोनों की ज्येष्ठता अथवा पदोन्नति की संभावनाओं पर परस्पर कोई प्रभाव पड़ता हो।

51. अपीलकर्ता तथा रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की ज्येष्ठता में पर्याप्त अंतर है। पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं द्वारा न्यायालय को अवगत कराया गया कि ज्येष्ठता सूची में रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी का क्रमांक 73 है, जबकि अपीलकर्ता का क्रमांक 118 है। यह तथ्य केवल इस बात को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है कि ज्येष्ठता में इतने व्यापक अंतर की स्थिति में, यदि रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की नियुक्ति अथवा सेवा को अवैध भी मान लिया जाए, तब भी उससे अपीलकर्ता की ज्येष्ठता अथवा पदोन्नति की किसी संभावना पर उपर्युक्त व्यापक अंतर के कारण कोई प्रभाव पड़ना संभावित नहीं है।

52. अतः अपीलकर्ता यह सफलतापूर्वक प्रदर्शित नहीं कर सका कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश से उसे कोई वास्तविक विधिक क्षति अथवा प्रतिकूल प्रभाव पहुँचा है। यहाँ तक कि अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता भी इस तथ्य का खंडन नहीं कर सके कि रिट न्यायालय के आदेश का ऐसा कोई प्रत्यक्ष परिणाम नहीं है, जिससे समय की निकटता तथा उत्पन्न क्षति—दोनों दृष्टियों से अपीलकर्ता प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित होता हो।

53. अपीलकर्ता उस रिट याचिका का पक्षकार भी नहीं था, जिससे विवादित आदेश उत्पन्न हुआ है। यद्यपि वह ऐसा परिवादी हो सकता है जिसकी शिकायत के आधार पर कार्यवाही प्रारम्भ हुई हो, तथापि ऐसे परिवादी को केवल सूचना देने वाला व्यक्ति ही माना जा सकता है। एक बार सक्षम प्राधिकारियों द्वारा उस शिकायत का संज्ञान लेकर विधिसम्मत कार्यवाही प्रारम्भ कर दिए जाने के पश्चात्, नियोजक और कर्मचारी के मध्य चलने वाली कार्यवाही में उसकी सहभागिता के अधिकार का इतना विस्तार नहीं किया जा सकता कि उसे अपील प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त हो जाए। ऐसा अधिकार केवल उसी व्यक्ति को प्राप्त है जो वास्तव में प्रतिकूल रूप से प्रभावित व्यक्ति हो। वास्तविक विधिक क्षति के अभाव में अपीलकर्ता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित व्यक्ति नहीं माना जा सकता।

54. अतः जब तक किसी व्यक्ति पर किसी आदेश के प्रत्यक्ष प्रतिकूल परिणाम न पड़ते हों, जो पदोन्नति, ज्येष्ठता अथवा इसी प्रकार के अन्य सेवा-संबंधी विषयों से उत्पन्न होकर किसी कर्मचारी अथवा कर्मचारियों के किसी वर्ग को प्रभावित करते हों, तब तक किसी विशेष कर्मचारी अथवा किसी तृतीय व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता कि वह किसी अन्य कर्मचारी की नियुक्ति अथवा सेवा से पदच्युति से संबंधित आदेश को चुनौती दे। ऐसे विषय स्वभावतः एवं मूलतः संबंधित कर्मचारी तथा उसके नियोजक के मध्य के निजी सेवा-विवाद होते हैं।

55. उपर्युक्त समस्त विवेचना के आलोक में यह न्यायालय स्पष्ट मत व्यक्त करता है कि वर्तमान अपीलकर्ता को ऐसा प्रतिकूल रूप से प्रभावित व्यक्ति नहीं माना जा सकता, जो विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित उस आदेश को चुनौती देने का अधिकारी हो, जिसके द्वारा रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी के विरुद्ध पारित सेवा से पदच्युति का आदेश निरस्त किया गया है। तथापि यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने रिट याचिकाकर्ता/प्रतिवादी की नियुक्ति की वैधता के संबंध में कोई मत व्यक्त नहीं किया है। यदि नियोजक उक्त नियुक्ति को चुनौती देना उचित समझे, तो वर्तमान आदेश उसके मार्ग में किसी प्रकार की बाधा नहीं होगा और न ही यह आदेश किसी भी प्रकार से, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से, रिट याचिकाकर्ता की नियुक्ति का अनुमोदन अथवा समर्थन करता है, क्योंकि वर्तमान चरण में वह प्रश्न इस न्यायालय के समक्ष विचाराधीन नहीं है। इस न्यायालय ने अपनी विवेचना को केवल इस प्रश्न तक सीमित रखा है कि अपील करने की अनुमति प्राप्त करने के लिए अपीलकर्ता को वाद प्रस्तुत करने की विधिसम्मत पात्रता प्राप्त है अथवा नहीं।

56. उपर्युक्त समस्त कारणों से अपील प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान किए जाने हेतु प्रस्तुत प्रार्थना-पत्र निरस्त किया जाता है तथा यह घोषित किया जाता है कि वर्तमान विशेष अपील अपीलकर्ता नीरज कुमार सिंह के आवेदन पर ग्राह्य नहीं है। प्रकरण के तथ्यों एवं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए व्यय के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया जाता।

अस्वीकरण
"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"

Translated version Not for Legal Use

(न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह,) (मुख्य न्यायमूर्ति अरुण भंसाली,)

19 मार्च, 2026

राकेश/-

Translated version. Not for Legal Use.

अस्वीकरण
"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"